इकाई 3 वाणिज्य और व्यापार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्न की विवेचना कर सकेंगे :

- 700 ईसवी से 1300 ईसवी के बीच छः सदियों में भारत के आर्थिक इतिहास में व्यापार और वाणिज्य की भूमिका,
- दो चरणों में व्यापार की ऐतिहासिक विशेषताएं
  - i) ई. 700 से 900 तक और
  - ii) ई. 900 से 1300 तक,
- व्यापार और वाणिज्य का संबंध
  - i) धातु मुद्रा से
  - ii) गांव की अर्थव्यवस्था से, और
  - iii) नगर से
- व्यापार कार्यों में शिल्प और उद्योग की भूमिका
- अंतर्देशीय और विदेशी व्यापार में व्यापार की वस्तुओं और उनके उपभोक्ताओं की भूमिका,
- व्यापार के मुख्य मार्ग और संचार के साधन, और
- व्यापारियों और सौदागरों के हितों को बढ़ावा देने में राजनीतिक अधिकारियों की भूमिका।

3.1 प्रस्तावना

इकाई 2 में किया गया शहरी बस्तियों का अध्ययन तब तक अधूरा रहेगा जब तक इसे व्यापार और वाणिज्य से नहीं जोड़ा जाए। प्रारंभिक मध्ययुगीन सदियों में यह पहलू भारतीय अर्थव्यवस्था का एक अभिन्न अंग है। पिछली दो इकाइयों (1 और 2) के समान इस इकाई में व्यापार का विश्लेषण भारतीय सामंतवाद के विकास की पृष्ठभूमि में किया गया है। मुद्रा के उपयोग का स्वरूप और सीमा, बाजार की कार्य प्रणाली, कृषि उत्पादन की भूमिका और शहरी बस्तियों के विभिन्न चरण, सभी एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। इसमें से

कोई भी भूमि अनुदान की व्यवस्था से अलग नहीं है। इसकी चर्चा इकाई 1 में हो चुकी है और इसे 800-1300 की सदियों में पूरे भारत की विशेषता बताया गया है। ऐसा कहा जा सकता है कि इस काल में व्यापार और वाणिज्य का भी सामंतीकरण हो गया था।

3.2 व्यापार : परिभाषा और चरण

माल इकट्ठा करने, इसके वितरण और विनिमय को व्यापार कहते हैं। यह एक प्रक्रिया है जो बहुत कारकों पर निर्भर करती है जैसे उत्पादन का स्वरूप और मात्रा, यातायात की सुविधा, व्यापारियों की सुरक्षा, विनिमय के प्रतिरूप आदि। इसमें व्यापारियों, सौदागरों, किसानों और शिल्पकारों के अलावा समाज के अन्य हिस्से भी शामिल रहते हैं। अपरोक्ष रूप में इसमें राजनीतिक अधिकारियों की भी रुचि रहती है क्योंकि माल पर लगाया गया कर राज्य के राजस्व का एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है।

प्रारंभिक मध्ययुगीन काल के व्यापार की ऐतिहासिक विशेषताओं को बेहतर ढंग से समझने के लिए हम इस काल को मोटे तौर पर दो चरणों में बांट लेते हैं : (1) ई 700-900 तक और (2) ई. 900-1300 तक। संक्षेप में इन दो चरणों की निम्नलिखित विशेषताएं है : (अ) पहले चरण में व्यापार, धातु मुद्रा, शहरी केन्द्रों का सापेक्ष ह्रास और गांव की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था और (ब) दूसरे चरण में पहले बताई गयी प्रवृत्तियों का विपरीत होना। ऐसा प्रतीत होता है व्यापार सिर्फ देश के अंदर ही नहीं बल्कि विदेशी व्यापार भी तेजी से बढ़ रहा था। दूसरे चरण में, पहले चरण की तरह धातु सिक्कों की उतनी कमी नहीं थी। इस चरण में मुद्रा अर्थव्यवस्था उतनी प्रचलित नहीं थी जितनी मौर्य साम्राज्य (ई. पू. 200 से 500 ई.) के पतन के बाद की पाँच सदियों में थी। व्यापार के फिर से शुरू होने तथा कृषि के विस्तार का शहरी विकास के प्रतिरूप पर असर पड़ा था।

3.3 पहला चरण (ई. 700-900)

700-1000 ई. के काल में यह पाया गया है कि भूमि अनुदान सिर्फ पुजारियों और मंदिरों को ही नहीं बल्कि योद्धाओं और राजकीय अधिकारियों को दिया गया। इकाई 1 में हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि इससे विभिन्न श्रेणियों के जमींदारों का उदय हुआ। यहां तक कि बड़े राजकीय अधिकारियों जैसे माहा-मण्डलेश्वर, मंदालिका, सामंत, महासामंत, ठाकुर आदि भी भूमि से संबंधित गतिविधियों में रुचि लेने लगे हालांकि वे वास्तविक खेत जोतने वालों से अलग थे क्योंकि वे किसानों से हासिल किए गए अधिशेष पर निर्भर थे। इस प्रकार किसानों के पास व्यापार के लिए कुछ भी नहीं रह जाता था। इससे एक ऐसी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास हुआ जिसमें वास्तविक उत्पादकों की गतिशीलता पर प्रतिबंध लगा कर स्थानीय जरूरतों को स्थानीय रूप से पूरा किया जाता था। विनिमय के माध्यम जैसे धातु सिक्कों की सापेक्षिक कमी ने इस प्रवृत्ति को और मजबूत बनाया।

3.3.1 विनिमय के माध्यम

700 से 1000 ई. तक भारत में कई महत्वपूर्ण राजवंशों ने राज किया। इनमें पश्चिम भारत में गुरजारा-प्रतिहार, पूर्वी भारत में पाल और दक्खन में राष्ट्रकूट थे। उस समय के कुछ शक्तिशाली राजा जिन्होंने लंबे समय तक शासन किया इन राजवंशों के थे। बड़े आश्चर्य की बात है कि उस समय के बहुत कम सिक्के उपलब्ध हैं और उनकी तुलना पहले की सदियों के सिक्कों से मात्रा या स्तर में नहीं की जा सकती थी। क्योंकि माल की खरीद या बिक्री में मुद्रा की महत्वपूर्ण भूमिका है इसलिए पुरातात्विक खोजों में सिक्कों की कमी तथा सिक्कों को ढालने के सांचों की अनुपलब्धता से यह पता चलता है कि उस काल में व्यापार काफी कम हो गया था।

हालांकि सबसे पहले डी.डी. कोसाम्बी ने इस पहलू की चर्चा की थी लेकिन 1965 में प्रो० आर.एस. शर्मा के "भारतीय सामंतवाद" के प्रकाशन के बाद ही गुप्त काल के बाद के कालों में सिक्कों की कमी और व्यापार तथा वाणिज्य से इसके संबंध और इसके परिणामस्वरूप सामंती समाज व्यवस्था के उद्भव की बात सामने आयी। पिछले 35 सालों

में इस पर काफी बहस हुई है। अब तक चार मत सामने आए हैं :

i) एक में उपर्युक्त दिए गए पहलू का समर्थन किया गया है।

ii) उड़ीसा पर किया गया एक अध्ययन यह सिद्ध करता है कि 600 से 1200 ई. तक सिक्के का चलन बिल्कुल नहीं था लेकिन यह अध्ययन दक्षिण पूर्वी एशिया से व्यापार की चर्चा करता है और विदेशी व्यापार में वस्तु विनिमय पर जोर देता है।

iii) कश्मीर में 800 ई. से ही तांबे के सिक्कों का प्रचलन हो गया था, सिक्कों के निम्न स्तर को कश्मीर घाटी में व्यापार के पतन पर आधारित अर्थव्यवस्था और कृषि पर आधारित गतिविधियों की पृष्ठ भूमि में समझा जा सकता है।

iv) अंत मे एक मत सिक्कों की कमी और व्यापार के ह्रास के बीच संबंध पर आपत्ति प्रकट करता है। यह 700 से 1200 ई. के बीच मध्यपूर्व भारत जिसमें बिहार, पश्चिमी बंगाल और वर्तमान बंगलादेश आते हैं से मिले प्रमाणों पर आधारित है। यह बात मानी जाती है कि उस समय सिक्के उपयोग में नहीं लाये जाते थे और पाल और सैन राज्यों में सिक्के नहीं ढाले जाते थे। यह भी कहा जाता है कि विनिमय के माध्यमों की कोई कमी नहीं थी। उदाहरण के तौर पर यह बताया जाता है कि चांदी के सिक्के हरिकेला ही नहीं बल्कि कौडियां और सबसे महत्वपूर्ण चूर्णी (सोने, चांदी के बूरे) भी विनिमय के माध्यम थे।

कुछ क्षेत्रों में अपवाद हो सकते हैं लेकिन पूरे भारत के परिप्रेक्ष्य में प्रो० शर्मा की परिकल्पना सही साबित होती है। क्षेत्रीय अपवादों के संदर्भ में निम्नलिखित सवालों पर ध्यान देना जरूरी है :

- इन वाणिज्यिक गतिविधियों का स्वरूप और सीमा क्या थी?
- क्या वे गतिविधियां एक स्थाई वाणिज्यिक वर्ग को जन्म देने में सक्षम थीं?
- इस व्यापार से किस को लाभ पहुंचता था?
- क्या इस तथाकथित बढ़ते व्यापार से मेहनतकश जनता और एक स्थान पर बसे किसानों को कोई फायदा था? इस संदर्भ में यह ध्यान देने योग्य बात है :
- मध्य पूर्वी भारत से संबंधित स्रोत जिन्हें उस क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में उद्धृत किया गया है वहां के मूल निवासियों की समुद्री व्यापार में भागीदारी के बारे में कुछ नहीं बताते हैं।
- यहां तक की सीमित व्यापारिक गतिविधियां भी विशिष्ट शासक वर्ग के ही हाथ में थीं।
- आम व्यक्ति की दयनीय हालत बंगाली शब्द (बंगाल का निवासी) से प्रकट होती है। यह शब्द गरीबी और दयनीय स्थिति को दर्शाता है।

इस तरह जो लोग भारत के दक्षिण पूर्व एशिया से व्यापार की बात करते हैं उन्हें उस क्षेत्र की धातु मुद्रा की स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरण के लिए कम्बोडिया पर किए गए एक विस्तृत अध्ययन से पता लगता है कि गुप्त काल (600 से 800 ई.) के बाद की दो सदियों में दक्षिण पूर्व एशिया में मुद्रा की कोई व्यवस्था विकसित नहीं हो सकी थी और वस्तुविनिमय (मुख्यतः धान और अंशतः कपड़े पर आधारित) ही खमीर अर्थव्यवस्था का आधार था। प्रारंभिक मध्ययुगीन सिक्कों जैसे इंडो-ससानियन, श्री विग्राहा, श्री अधिवाराहा, बुल और होर्स मैन, गधिया आदि का प्रयोग पश्चिम और उत्तर पश्चिम में और कुछ हद तक गंगा की घाटी में शुरू हो चुका था परन्तु कुल मिलाकर समूची अर्थव्यवस्था पर यह कोई खास प्रभाव नहीं डाल सके। सिक्कों के प्रचलन के काल के बारे में अभी भी संदेह है। उनका अत्यंत निम्न स्तर और उनकी कुछ भी खरीदने की घटती हुई क्षमता उनकी वास्तविक भूमिका के ह्रास को इंगित करती है। इसके अलावा बढ़ती हुई आबादी और बस्तियों के विस्तार के संदर्भ में मुद्रा चलन की मात्रा नगण्य थी। इस तरह हम कह सकते हैं कि पहले चरण में धातु मुद्रा में सापेक्ष कमी आनुभाविक प्रमाणों पर आधारित है। इसका भारत की व्यापारिक गतिविधियों पर प्रभाव पड़ना निश्चित था

3.3.2 व्यापार का सापेक्ष ह्रास

आंतरिक तौर पर राजनीतिक शक्ति का बिखराव और स्थानीय प्रधानों और धार्मिक अनुदान पाने वाले आदि के हाथ में शक्ति आ जाने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारंभिक सदियों में भूमि-अनुदान पर आधारित अर्थव्यवस्था पर विपरीत असर पड़ा। बहुत से बिचौलिए जमींदार, विशेषकर कम उपजाऊ क्षेत्रों में रहने वाले, लूट पाट करने लगे या

अपने क्षेत्र से गुजरने वाले माल पर अत्यधिक कर लगाने लगे। इससे व्यापारियों और सौदागरों के व्यवसाय में बाधा पड़ी। संभावी शासक प्रधानों के बीच आपसी लड़ाई ने भी व्यापारियों को हतोत्साहित किया। हालांकि आठवीं सदी के दो जैन ग्रंथ (हरिभद्र शूरी का समरइचहकहा और उघोत्तना शूरी का कुवालयमाला बढ़ते हुए व्यापार और चहल-पहल वाले शहरों की चर्चा करते हैं लेकिन यह तर्क सही है कि ये ग्रंथ ज्यादातर सामग्री पहली की सदियों के स्रोतों से लेते हैं इसलिए यह जरूरी नहीं है कि ये आठवीं सदी की सही आर्थिक स्थिति को दर्शाते हैं।
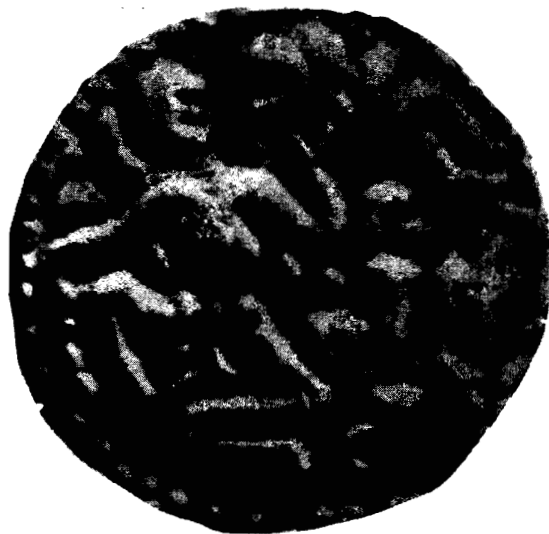
८. दसवीं शताब्दी ई. के सिक्के।

पश्चिम के साथ विदेशी व्यापार के ह्रास के बारे में यह बताया जाता है कि चौथी सदी में महान रोमन साम्राज्य के पतन के बाद इसमें गिरावट आयी। छठी सदी के मध्य में भी इस पर विपरीत प्रभाव पड़ा जब बाइजनटाइन (पूर्वी रोमन साम्राज्य) के लोगों ने रेशम बनाने की कला को सीखा। इस तरह भारत ने एक महत्वपूर्ण बाजार खो दिया जिससे ईसवीं की प्रारंभिक सदियों में भारत को बड़ी मात्रा में सोना प्राप्त हुआ था।

विदेशी व्यापार का पतन सातवीं और आठवीं सदी में भारत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर अरबों के विस्तार के कारण भी हुआ। इस क्षेत्र में उनकी मौजूदगी से भारतीय व्यापारियों के लिए स्थल मार्ग असुरक्षित हो गए। कथासरितासागर में एक कहानी हमें बताती है कि

उज्जैन से पेशावर जा रहे सौदागरो के एक समूह को एक अरब ने पकड़ कर बेच दिया। बाद में जब वे किसी तरह मुक्त हुए तो उन्होंने सदैव के लिए उत्तर पश्चिमी इलाके को छोड़ने का फैसला कर लिया और व्यापार के लिए दक्षिण को लौट गये। तिब्बतियों और चीनियों के बीच इन सदियों में हुई लड़ाइयों ने भी मध्य एशिया के मार्गों पर माल लाने-ले जाने की गतिविधियों को प्रभावित किया। भारत के पश्चिमी तटों में भी समुद्री व्यापार अरबों द्वारा सातवीं सदी में भड़ौच और थाना पर हमलों और बल्लभी के विनाश के कारण (बल्लभी जो आठवीं सदी में सौराष्ट्र तट का एक महत्वपूर्ण बंदरगाह था) अस्तव्यस्त हुआ। हालांकि बाद में अरबों ने (दसवीं सदी के बाद) भारतीय समुद्री व्यापार के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रारंभ में उनके समुद्री हमलों का भारतीय वाणिज्यिक गतिविधियों पर विपरीत प्रभाव पड़ा था। समकालीन साहित्य में भारत के दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों के साथ सम्पर्क का उल्लेख है लेकिन यह संदेहास्पद है कि क्या यह पश्चिम के साथ व्यापार के ह्रास की पूर्ति कर पाया।

3.3.3 शहरी बस्तियों का ह्रास

पहला चरण बहुत से शहरों के ह्रास और उजड़ने का चरण है। यह वाणिज्य में ह्रास का लक्षण है क्योंकि शहर मुख्यतः उन लोगों की बस्तियां हैं जो शिल्प कला और वाणिज्य में संलग्न हैं। व्यापार में ह्रास और शिल्प की वस्तुओं की मांग में कमी आई। शहरों में रहने वाले व्यापारियों और दस्तकारों को जीविका के वैकल्पिक साधन ढूंढने के लिए देहाती इलाकों में जाना पड़ा। इस प्रकार कस्बों का पतन हुआ और शहरी लोग ग्रामीण अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन गए। ह्वेनसांग के उल्लेखों के अलावा पौराणिक अभिलेख भी काली युग का उल्लेख करते हुए महत्वपूर्ण शहरों की बढ़ती आबादी की ओर संकेत करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वारामीहीरा (पांचवीं सदी) द्वारा इंगित प्रवृत्ति कायम रही। इकाई 2 में 140 स्थलों की खुदाई से प्राप्त आंकड़ों की चर्चा की गई है। वैशाली, पाटलीपुत्र, वाराणसी आदि जैसे महत्वपूर्ण शहरों का ह्रास पुरातात्विक खुदाई से स्पष्ट है। खुदाई ढांचों और प्राचीन वस्तुओं के निम्न स्तर को प्रकट करती है। तीसरी और आठवीं सदी के बीच का अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य शहरी केन्द्रों से उजड़ने और उनके ह्रास की स्थिति को दर्शाता हैं। यहां तक की जो बस्तियां आठवीं सदी तक भी रहीं वे बाद में उजड़ गईं। हम रोपर (पंजाब) अंतरंजीखेरा और भीता (उत्तर प्रदेश) की चर्चा कर सकते हैं। मध्य प्रदेश में प्रभास पातन (गुजरात) में महेश्वर, पौनार (महाराष्ट्र) और कूडावेली (आंध्र प्रदेश) शहरी बस्तियों की इस श्रेणी में आते हैं। कन्नौज (उत्तर प्रदेश के फारुखाबाद जिले में) की मध्ययुगीन महत्ता का, जिस पर अधिकार पाने के लिए पालों, प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के बीच कई लड़ाईयां लड़ी गयीं, खुदाई के द्वारा प्रमाणित होना बाकी है।

मध्ययुगीन काल के पहले चरण में हालांकि वाणिज्यिक गतिविधियों का ह्रास हुआ था परन्तु यह पूरी तरह से समाप्त नहीं हुई। दरअसल राजाओं, सामंतों, मंदिर और बौद्ध विहारों के महन्तों के लिए निर्मित कीमती और विलासिता वाली वस्तुओं का व्यापार जारी रहा। बहुमूल्य और अर्ध मूल्यवान पत्थरों, हाथी दांत, घोड़े इत्यादि जैसी वस्तुएं लम्बी दूरी के व्यापार का एक महत्वपर्ण हिस्सा थी। इस काल के स्रोतों में दैनिक इस्तेमाल की वस्तुओं के आदान-प्रदान के बहुत कम प्रमाण मिले हैं। अभिलेखों में उल्लेखित महत्वपूर्ण वस्तुओं में सिर्फ नमक और तेल शामिल हैं जिनका उत्पादन प्रत्येक गांव में नहीं होता था। इसीलिए इन्हें बाहर से मंगाना पड़ता था। यदि अर्थव्यवस्था आत्मनिर्भर नहीं होती तो अनाज, चीनी, कपड़ा, हस्तकला की वस्तुओं इत्यादि में व्यापार का उल्लेख अधिक मिलता। संक्षेप में 750 से 1000 ईसवी के बीच की वाणिज्यिक गतिविधियों की प्रकृति ऐसी थी जो बिचौलियों भू-स्वामियों और सामंतों की जरूरतों की पूर्ति करती थी न कि आम जनता की। हालांकि पीहोआ (हरियाणा में करनाल के पास) और अहर (उत्तर प्रदेश में बुलन्दशहर के पास) जैसे व्यापार और वाणिज्य के कुछ केन्द्र थे जहां दूर-दूर से व्यापारी व्यापार करने के लिए आते थे। परन्तु वे पूरे देश की आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं डाल पाए।

बोध प्रश्न 1

1) 700-900 ई. के दौरान अर्थव्यवस्था की महत्वपूर्ण विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) निम्न कथनों में कौन-सा कथन सही और कौन-सा गलत है? चिन्ह ✓ या ✗ लगाएं।
   i) आर.एस. शर्मा के अनुसार गुप्तकाल के बाद सिक्का ढलाई में ह्रास हुआ।
   ii) उड़ीसा में 600 से 1200 ई. के बीच सिक्के प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे।
   iii) कश्मीर (आठवीं सदी के आस पास) के ताम्र सिक्कों के निम्न स्तर का कारण व्यापार का ह्रास ठहराया जा सकता है।
   iv) आठवीं व बारहवीं सदियों के दौरान ढले हुए सिक्कों के अलावा विनिमय के दूसरे माध्यम नहीं थे।

3) अरबों ने आठवीं और बारहवीं सदियों के बीच भारतीय व्यापार को कैसे प्रभावित किया?

....

....

....

....

....

4) सातवीं और नौवीं सदियों के बीच नगरों के ह्रास के मुख्य कारण स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

....

3.4. दूसरा चरण (ई. 900-1300)

इस चरण की विशेषता व्यापार और वाणिज्य का पुनरुत्थान है। इस काल में कृषि का विस्तार, मुद्रा का बढ़ता प्रचलन और बाजार अर्थव्यवस्था का पुर्नउदय हुआ जिसमें माल का उत्पादन स्थानीय खपत की बजाय विनिमय के लिए हुआ। इन सदियों में महाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में शहरी बस्तियों का पर्याप्त विकास हुआ।

हम इकाई 1 में पढ़ चुके हैं कि भूमि अनुदान ने कृषि के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। हालांकि यह बात साबित हो चुकी है कि इस विकास को मापना आसान नहीं है क्योंकि क्षेत्रीय विविधताओं और असमानताओं को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। हालांकि दसवीं से तेरहवीं सदियों के बीच दालों, अनाज के साथ-साथ नगदी फसलों का उत्पादन भी बढ़ा। स्वाभाविक रूप से आंतरिक और बाहरी व्यापार को इससे बढ़ावा मिला।

3.4.1 शिल्प और उद्योग

शिल्प उत्पादन ने कृषि उत्पादन के विकास में योगदान दिया। प्रारंभिक मध्ययुगीन काल के पहले चरण में आंतरिक और बाहरी व्यापार के ह्रास से औद्योगिक उत्पादों के लिए बाजार की कमी हो गयी। उत्पादन सिर्फ क्षेत्रीय और स्थानीय जरूरतों के लिए सीमित रह गया। दूसरे चरण में हम पाते हैं कि शिल्प उत्पादन में वृद्धि हुई जिसने क्षेत्रीय और अन्तर क्षेत्रीय विनिमय को बढ़ावा दिया।

कपड़ा उद्योग जो प्राचीन काल से ही स्थापित था अब एक प्रमुख आर्थिक गतिविधि के रूप में विकसित होने लगा। मोटे और महीन दोनों तरह की रुई की वस्तुओं का उत्पादन जो

रहा था। मारको पोलो (ई. 1293) और अरब के लेखकों ने बंगाल और गुजरात के सूत की बहुत प्रशंसा की है। बंगाल में मद्दर और गुजरात में इंडिगों की उपलब्धता ने भी शायद इन क्षेत्रों में कपड़ा उद्योग के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी। बारहवीं सदी के ग्रंथ मानासोलास में पैठान, नागपट्टिनम, कलिंग और मुलतान को महत्वपूर्ण कपड़ा उद्योग केन्द्र बताया गया है। कर्नाटक और तमिलनाडु में रेशम के बुनकर समाज का एक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली तबका थे।

तेल उद्योग इस काल में काफी महत्वपूर्ण हो गया था। दसवीं सदी के उपरांत तेलहन बोने और तेल के मिल या धनाका के प्रमाण मिलते हैं। कर्नाटक में पाए गए एक अभिलेख में विभिन्न प्रकार के तेल मिलों जो कि आदमी और बैलों द्वारा चलाए जाते थे, की चर्चा की गई है। धनी तेलिकों के बारे में भी हमें जानकारी मिलती है जिनमें से कुछ ने मंदिर बनवाए और अन्य सार्वजनिक निर्माण कार्य करवाए। यह जानकारी भी मिलती है कि तेल उद्योग से इसके सदस्यों को मुनाफा भी हुआ। इसी प्रकार इस काल में गन्ना उत्पादन और गन्ने की पिराई का उल्लेख किया गया है। यह गुड़ और चीनी के दूसरे रूपों के बड़े पैमाने पर उत्पादन की ओर इशारा करता है। कृषि आधारित उद्योगों के अलावा, धातु और चमड़े की वस्तुओं में शिल्पकारी उच्च कोटि की थी। साहित्यिक ग्रंथों में उन दस्तकारों की चर्चा पाई गई है जो विभिन्न प्रकार के धातुओं जैसे तांबा, पीतल, लोहा, सोना, चांदी आदि के काम से जुड़े हुए थे। उड़ीसा के पुरी एवं कोणार्क मंदिरों में बड़ी संख्या में पाई गई छड़ों से बारहवीं सदी के लोहारों की दक्षता का पता चलता है। लोहे का उपयोग तलवार, भाला, और दूसरे उच्च कोटि के शस्त्र बनाने में किया जाता था। मगध, बनारस, कलिंग और सौराष्ट्र अच्छी कोटि के तलवार निर्माण के लिए जाने जाते थे। गुजरात सोने और चांदी की कढ़ाई के लिए जाना जाता था। बारहवीं सदी के यहूदी सौदागरों के गिंजा रिकार्डों से भारतीय पीतल उद्योग की प्रसिद्धि का पता चलता है। एडेन से ग्राहक टूटे बर्तनों को भारत भेजते थे जिससे कि उनकी जरूरत के हिसाब से मरम्मत की जा सके। नालंदा, नेपाल, कश्मीर और चोल राज्य की कांस्य की बनी वस्तुओं से उस समय के भारतीय धातु कारीगरों की कुशलता का पता चलता है।

चमड़ा उद्योग के क्षेत्र में गुजरात की स्थिति बहुत अच्छी थी। मारको पोलो बताता है कि उस समय गुजरात के लोग चमड़े की लाल और नीले रंग की खूबसूरत चटाई बनाते थे जिन पर पक्षियों और जानवरों की कढ़ाई होती थी। अरब में इनकी बहुत अधिक मांग थी

3.4.2 सिक्के और विनिमय के दूसरे माध्यम

धातु मुद्रा के पुर्नउदय ने इन सदियों में व्यापार को काफी मदद पहुंचाई। इसलिए मुद्राकरण के स्तर पर काफी बहस हुई है। प्रायः बाजार में मुद्रा के प्रचलन का समर्थन करने वाले इतिहासकार साहित्य और अभिलेखों की चर्चा प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत में विभिन्न तरह के सिक्कों का वर्णन करने के लिए करते हैं। इस तरह ग्रंथों जैसे "प्रबंधचिन्तामणि", "लीलावती", "द्रव्यपरीक्षा", "लेखाधिपति आदि में भागका, रूपका, विमशतिका, कर्शपाना, दीनार, द्रमः, निशका, गधिया-मुद्रा, गडयंका, टंका और कई सिक्कों की चर्चा पाई गई है। अभिलेखों में भी सिक्कों की चर्चा पाई गई है। उदाहरण के लिए सियादोनी अभिलेख में दसवीं सदी के मध्य के विभिन्न तरह के द्रमों (सिक्कों) की चर्चा पाई गई है। परमारों, चालुक्यों, चहमानों, प्रतिहारों, पालों, चंदेलों और चोलों के अभिलेख उस समय के साहित्य में मिले सिक्कों के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों की पुष्टि करते हैं। इन मुद्राओं के मूल्य के बारे में, इनकी धातु की मात्रा और इनके एक दूसरे से संबंधों के बारे में बहुत से अनुमान लगाए गए हैं। अभिलेखों और साहित्य के आधार पर सिक्कों के अध्ययन से मुद्रा के बाजार में भारी प्रचलन का मत एक कठिन विवेचन को सरल तरह से प्रस्तुत करता है। इसलिए हमें इन सभी पक्षों की जांच करनी होगी। जांच के विभिन्न पक्ष निम्न हैं :

i) मुद्रा (सिक्कों) की चर्चा शहरी क्षेत्रों या ग्रामीण क्षेत्रों में विनिमय के संदर्भ में है,

ii) विनिमय केन्द्रों के प्रकार और बाजार का स्वरूप जहां आदान-प्रदान होता था,

iii) आदान-प्रदान में संलग्न लोग,

iv) किस हद तक मुद्रा (सिक्कों) के संबंध में अभिलेखीय संदर्भ सिर्फ वैचारिक है।

जहां तक सिक्कों के नमूनों का सवाल है सोने के सिक्के ढालने का पुनः प्रचलन गांगेयद्रा (ई. 1019 से 1040) मध्य प्रदेश में त्रिपुरी के कालाचुरी राजा, चार सदियों के बाद (उत्तर प्रदेश में वाराणसी के निकट) गहादवाला के राजा गोविन्दचंद्र, मध्य भारत में चंदेला राजा

कीर्तिवर्मन और मदनवर्मन के समय में हुआ। कश्मीर के राजा हर्ष और तमिलनाडु के सोमजे चोल राजाओं ने भी सोने के सिक्के जारी किए। पश्चिम और उत्तर-पश्चिम भारत के प्रारंभिक मध्ययुगीन सिक्कों की चर्चा पहले भी की गई थी। एक अनुमान के अनुसार कर्नाटक में बारहवीं तेरहवीं सदी के दौरान नौ टकसालों की स्थापना की गई। राजस्थान में जोधपुर के निकट श्रीमोल में एक महत्वपूर्ण टकसाल था। जहां तक धातु मुद्रा की वास्तविक भूमिका का सवाल है क्षेत्रीय आधार पर बहुत सीमित अध्ययन किया गया है, जिसके आधार पर हम मुद्रा के भारी प्रचलन को सिद्ध नहीं कर सकते।

सिक्कों के संदर्भ में पाए गए अनेक प्रमाणों के बावजूद मुद्रा के कुल-मिलाकर प्रचलन के प्रमाण लगभग नगण्य हैं। प्रारंभिक मध्यकाल के सिक्कों की निम्न क्रय शक्ति को, चाहे वह किसी भी धातु के बने हों, अनदेखा नहीं किया जा सकता है। इस काल के सभी सिक्के बहुत ही निम्न स्तर के थे तथा इनका वजन भी बहुत कम था। बढ़ती आबादी और बस्तियों के विस्तार के साथ-साथ ऐसा प्रतीत होता है कि मुद्रा का इस्तेमाल बहुत प्रतिबंधित हो गया था। मध्यकालीन राजस्थान पर किया गया अध्ययन यह दर्शाता है कि व्यापार का पुनरुत्थान, विनिमय केन्द्रों और बाजारों का विस्तार और सौदागरों के परिवारों की खुशहाली, ''आंशिक मुद्राकरण'' के साथ ही संभव हुआ। इसी प्रकार सिलहारों (ई. 850 से 1250) के समय में (पश्चिमी तट में कोंकण क्षेत्र इनके अधीन था) मौद्रिक अन्तरसंबंध की विशेषता मुद्रा का सीमित प्रयोग था। मुद्रा के प्रकार और स्तर न सिर्फ स्थानीय थे बल्कि आर्थिक स्वरूप पर इनका कोई प्रभाव नहीं था। आम जनता सिक्कों का अधिक प्रयोग नहीं करती थी। दक्षिण भारत में ई. 950 से 1300 की मुद्रा व्यवस्था यह दर्शाती है कि समाज के सभी स्तरों में आदान-प्रदान पर धातु मुद्रा (सिक्कों) का समान प्रभाव नहीं था। उदाहरण के तौर पर पांडयो द्वारा विदेशी घोड़ों की खरीद पर किये गये खर्च के बारे में पांडयों की निम्न स्तर की मुद्रा से अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। वस्तु विनिमय का स्थानीय अन्तर्क्षेत्रीय और शायद अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य में महत्वपूर्ण स्थान था। इस बात का पता चलता है कि सौदागरों के कारवां वस्तुओं का विनिमय दूसरे क्षेत्रों से किया करते थे। एक कथन के अनुसार विदेशों से खरीदे गए घोड़ों की कीमत नगद में नहीं बल्कि भारतीय माल जैसे रेशम, मसाले और हाथी दांत के रूप में अदा की जाती थी। इन भारतीय मालों की पूरी दुनिया में मांग रहती थी। हालांकि आंशिक मुद्राकरण का पुनः प्रचलन आर्थिक विकास में मदद कर रहा था लेकिन ऋण व्यवस्था के समानांतर विकास से जिसमें लेन देन बिना नगद मुद्रा के संभव था, का भी कम महत्व नहीं था। उस समय के ग्रंथों में हुंडिका या विनिमय पत्र के बारे में पता चलता है जो कि शायद सौदागरों द्वारा वाणिज्यिक आदान-प्रदान के उपयोग में लाया जाता था। इस पद्धति द्वारा एक सौदागर से दूसरे को ऋण दिया जा सकता था जिससे व्यापार में सिक्के रूपी मुद्रा की कमी के कारण उत्पन्न बाधा को दूर किया जा सकता था। लेखाधिपति नामक ग्रंथ जो कि बारहवीं-तेरहवीं सदी में गुजरात के लोगों के जीवन पर प्रकाश डालता है, उस समय जमीन, मकान और पशुधन को गिरवी रख कर ऋण लेने के बारे में जानकारी देता है। यह ग्रंथ इन तरीकों से वाणिज्यिक गतिविधियों के साथ-साथ उपभोक्ता वस्तुओं के लिए ऋण लेने के उपायों का उल्लख करता है।

बोध प्रश्न 2

1) नवीं से तेरहवीं सदी के बीच भारत में बनने वाले कपड़ों के प्रकार और स्तर पर टिप्पणी करें।

x..

....

....

....

....

2) नवीं से तेरहवीं सदी के बीच भारतीय शिल्पकारों के धातु के कामों को सूचीबद्ध करें।?

....

....

....

....

....

3) क्या हम नवीं से तेरहवीं सदी की अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से सिक्कों पर आधारित मान सकते हैं?

....

....

3.5. व्यापार के पहलू

कृषि उत्पादन में विस्तार और तेजी से बढ़ता हुआ औद्योगिक तथा शिल्प उत्पादन वे दो कारण थे जिन्होंने श्रेणीबद्ध विनिमय केन्द्रों के उद्भव में योगदान दिया। ये केन्द्र अपने इलाकों के बाहर भी कार्य करते थे। इस प्रकार अन्तर्क्षेत्रीय और क्षेत्र के अंदर के विनिमय तंत्र ने अपेक्षाकृत आत्मनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को पहले चरण (ई. 750 से 900) में हानि पहुंचाई।

3.5.1 अन्तर्देशीय व्यापार

विभिन्न किस्म की वस्तुओं को व्यापार मार्ग के तंत्र द्वारा व्यापार के लिए ले जाया जाता था। आइए पहले व्यापार की वस्तुओं की चर्चा की जाए।

(अ) व्यापार की वस्तुएं और उसके उपभोक्ता

अनेक अभिलेखों में उन व्यापारियों का उल्लेख पाया गया है जो अनाज, तेल, मक्खन, नमक, नारियल, सुपारी, पान के पत्ते, नील, मिश्री, गुड, सूती कपड़े, कपास, कम्बल, धातु, मसाले इत्यादि एक जगह से दूसरी जगह ले जाते थे और उन पर कर तथा चुंगी देते थे। स्पेन के (1200 सदी) एक जिसुइट पादरी बैंजामिन तुदेला से यह जानकारी मिलती है कि भारत से वापस लौटते समय, किस द्वीप में जो फारस की खाड़ी में है, व्यापारी अपने साथ जौ, गेहूं, और दालों के अलावा तेलहन और सूती कपड़े भी लाते थे। अलइदरीसी ने भी मालाबार से श्रीलंका को जहाजों द्वारा बारहवीं सदी में चावल पहुंचाने का उल्लेख किया है। खजूर की चीनी और रस्सीयों के लिए नारियल के रेशों के निर्यात के बारे में फ्रेयर जोरडॉनस ने लगभग ई. 1330 में लिखा है। मारको पोलो ने क्विलोन (जो मालाबार तट पर है) और गुजरात से नील के निर्यात का उल्लेख किया है। इसके अलावा बहुत सारे दूसरे स्रोतों में सूती कपड़ों, दरियों, चमड़े की चटाइयों, तलवारों और भालों का उल्लेख विनिमय की महत्वपूर्ण वस्तुओं के रूप में हुआ है। घोड़ों, हाथियों और गहनों जैसे कीमती सामान भी विभिन्न विनिमय केन्द्रों पर आते थे।

भारतीय वस्तुओं के मुख्य खरीददार निश्चित तौर पर चीन, अरब और मिस्र के धनी लोग थे। अनेक भारतीय वस्तुएं भूमध्य सागर के माध्यम से यूरोप तक पहुंच गई होंगी। हालांकि विदेशी व्यापार के विभिन्न पहलुओं पर बाद में बहस की जाएगी इस तथ्य पर प्रकाश डालने की जरूरत है कि आंतरिक मांग कम नहीं थी। आठवीं सदी के बाद बड़े पैमाने पर भूमि अनुदान की वजह से उपभोक्ताओं का एक नया वर्ग पनपा। जो पुजारी पहले घरेलू और दूसरे कर्मकांडों के बदले मिली छोटी-मोटी आमदनी पर निर्भर थे अब उन्हें पुश्तैनी तौर पर बड़ी जमींदारियां तथा अन्य लाभ और अधिकार मिल गए। यह भूपति वर्ग शासकों और उभरते हुए व्यापारिक वर्ग के साथ विलासिता के सामान का महत्वपूर्ण खरीददार हो गया क्योंकि इस वर्ग की क्रय शक्ति ज्यादा थी। ब्राह्मणवादी और गैर ब्राह्मणवादी धार्मिक प्रतिष्ठान जो भू सम्पत्ति और स्थानीय करों के रूप में विस्तृत संसाधनों के मालिक थे, अधिकांश बेचे जाने योग्य वस्तुओं के महत्वपूर्ण उपभोक्ता के रूप में उभरे। उन्हें न सिर्फ नारियल, पान पत्ते और सुपारी जैसी वस्तुएं जिनको धार्मिक पवित्रता मिली थी की जरूरत पड़ी परन्तु इसके साथ ही भगवान के भोग के लिए, भोज्य पदार्थों या प्रसादों की मात्रा की आवश्यकता भी बढ़ गई। धार्मिक प्रतिष्ठानों के कर्मचारी जिनकी संख्या बड़े और महत्वपूर्ण मंदिरों में सैकड़ों में थी किसानों, शिल्पकारों और व्यापारियों द्वारा उत्पादित तथा वितरित की गई वस्तुओं के महत्वपूर्ण उपभोक्ता वर्ग के रूप में सामने आए। इस तरह विस्तृत संसाधनों और विभिन्न जरूरतों वाले बड़े मंदिरों ने भी वाणिज्यिक गतिविधियों को बढ़ाने में मदद दी। दक्षिण भारत के मंदिरों की यह विशेष पहचान थी कि वे महत्वपूर्ण वाणिज्यिक केन्द्रों के रूप में उभरें (देखें इकाई 2, उपभाग 2.4.3)

(ब) व्यापार मार्ग और संचार के साधन

सड़कों का विस्तृत तंत्र विभिन्न बंदरगाहों को एक दूसरे से जोड़े हुए था। इनके द्वारा बाजारों और नगरों के बीच व्यापार और वाणिज्य होता था।

वृतांत से पता चलता है कि विभिन्न भू-क्षेत्र आपस में जुड़े हुए थे। ह्वेनसांग ने 'सातवीं' सदी में हिन्दकुश पार करते हुए उत्तर में काश्मीर से होते हुए दक्षिण में कांची और पूर्व में असम से लेकर पश्चिम में सिंध तक भ्रमण किया। ई. 903 के एक अभिलेख में सौदागरों का उल्लेख मिलता है जो कर्नाटक, मध्य प्रदेश, दक्षिणी गुजरात और सिंध से होते हुए राजस्थान में अहदा में व्यापार के लिए आए। ग्यारहवीं सदी में कश्मीर से आया एक कवि, बिलहाना, कश्मीर से मथुरा तक अपनी यात्रा के बारे में बताता है कि वह किस तरह कन्नौज और प्रयाग से बनारस पहुंचा। बनारस से वह सोमनाथ (सौराष्ट्र तट पर) धर (उज्जैन के निकट) और अनाहिलावाडा (उत्तरी गुजरात) से होते हुए पहुंचा। सोमनाथ से होनावार (गोवा के निकट) वह समुद्री मार्ग से गया और उसके बाद पूर्वी तट पर रामेश्वरम् भू-मार्ग से पहुंचा। अंत में वह पश्चिमी भारत में स्थित कल्याणी पहुंचा और पश्चिमी चालुक्यों के दरबार में पहुंचा।

अरबी और फारसी विवरण हमें समकालीन व्यापारिक मार्गों पर अधिक गहन जानकारी देते हैं। अलबरूनी (ई. 1030) ने 15 मार्गों का उल्लेख किया है जो कन्नौज, मथुरा, बयाना आदि से शुरू होते थे। कन्नौज का मार्ग प्रयाग से गुजरते हुए पूर्व की ओर ताम्रलिप्ति (पश्चिम बंगाल के मिदनापुर जिले में तामलुक में) के बंदरगाह तक जाता था। जहां से वह पूर्वी तट होते हुए दक्षिण में कांची तक जाता था। उत्तर पूर्व से यह मार्ग आसाम, नेपाल और तिब्बत तक जाता था जहां से भू-मार्ग से चीन तक जाया जा सकता था। उत्तर-पश्चिम में बल्ख जाते समय कन्नौज तथा मथुरा से गुजरना पड़ता था। यह मार्ग पेशावर और काबुल को जोड़ता था और अन्त में ग्रेट सिल्करूट में मिलता था जो चीन को यूरोप से जोड़ता था। यह उत्तर पश्चिमी मार्ग गुप्त काल से पहले की सदियों में भारत और मध्य एशिया के बीच वाणिज्यिक अंतरसंबंध का मुख्य मार्ग था। परन्तु प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में यह मुख्यतः अरब और तुर्की व्यापारियों के नियंत्रण में था जो इसका इस्तेमाल फारस, बल्ख और दूसरे इलाकों से घोड़े लाने के लिए करते थे। राजस्थान में बयाना का मार्ग मारवाड़ के रेगिस्तान से गुजरते हुए सिन्ध के आधुनिक बंदरगाह कराची तक जाता था। इस मार्ग की एक शाखा अरावली पहाड़ियों की पश्चिमी तलहटी में स्थित आबू से गुजरती थी और गुजरात के बंदरगाहों और शहरों को उत्तर और उत्तर-पश्चिमी भारत में स्थित बयाना, मथुरा और दूसरे स्थानों से जोड़ती थी। मथुरा और प्रयाग से एक दूसरा मार्ग पश्चिमी तट पर स्थित भड़ौच के बंदरगाह की ओर उज्जैन होते हुए जाता था। इन मार्गों ने भारत के भीतरी हिस्सों को अन्तर्राष्ट्रीय समुद्री व्यापार के लिए खोलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसने दसवीं सदी के बाद एक नया आयाम हासिल किया। सड़कों के अलावा उत्तर भारत की नदियों, और दक्षिण भारत के पूर्वी और पश्चिमी तटों के साथ लगे समुद्री मार्गों ने भी अंतर्क्षेत्रीय सम्पर्कों को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

प्राचीन काल में यात्रा, आनन्द और कष्ट व्यापारिक मार्गों की भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करती थी। रेगिस्तानी और पहाड़ी मार्गों वाले इलाकों से गुजरने वाले मार्ग निश्चित तौर पर ज्यादा दुष्कर और कठिन थे। मैदानी इलाकों में यात्रा का मुख्य साधन बैल गाड़ियां थीं लेकिन जहां ये नहीं चल पाती थीं वहां एक जगह से दूसरी जगह वस्तुओं को लाने ले जाने के काम के लिए जानवरों और आदमियों का इस्तेमाल होता था। समकालीन साहित्य में विभिन्न प्रकार की नौकाओं का उल्लेख मिलता है जिनका इस्तेमाल संभवतः जल मार्गों पर होता था जबकि बड़े जहाज समुद्रों में चलते थे।

दसवीं सदी के बाद के काल में एक महत्वपूर्ण घटना घटी। शासकों ने अपने राज्यों के राज मार्गों को सुरक्षित रखने में गहरी दिलचस्पी दिखाई। चोरों और लुटेरों को सजा देने के लिए कदम उठाए गए और गांव वालों को उनके इलाकों से गुजरने वाले व्यापारियों और यात्रियों की सुरक्षा के लिए सैन्य और आर्थिक मदद दी। गुजरात के चालुक्य राजाओं के शासन काल में एक अलग विभाग जियाला-पथकरण था जो राजमार्ग की देखभाल करता था। उन्होंने नई सड़कों का निर्माण भी करवाया जो उनके राज्य के महत्वपूर्ण बंदरगाहों और बाजारों को जोड़ती थीं और यात्रियों की सुविधा के लिए हौज और कुओं की खुदाई करवाई। चूंकि व्यापार राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत था इस लिए व्यापारियों और सौदागरों की सुरक्षा और खुशहाली के लिए राजनीतिक अधिकारियों का चिंतित होना स्वाभाविक था। मारको पोलो ने कैम्बे का उल्लेख करते हुए कहा है कि वह समुद्री डाकुओं के आतंक से मुक्त था, इससे यह पता चलता है कि भारतीय राजाओं ने अपने बंदरगाहों को डकैती से सुरक्षा प्रदान की थी। समुद्री डाकुओं का आतंक पश्चिमी चीन से फारस की खाड़ी तक के समुद्री मार्ग पर मुख्य खतरा था।

3.5.2 समुद्री व्यापार

इस काल में बड़े पैमाने पर व्यापारिक गतिविधियां समुद्र के जरिए हुईं। यहां हम उन देशों का उल्लेख करेंगे जो समुद्री व्यापार में भाग लेते थे और साथ ही व्यापार की वस्तुओं, मुख्य बंदरगाहों और समुद्री मार्गों की सुरक्षा की चर्चा करेंगे। हम पहले समुद्री व्यापार के मुख्य भागीदारों की चर्चा करेंगे।

इस काल की विशेषता एशिया के दो छोरों, फारस की खाड़ी और दक्षिण चीन के बीच समुद्री व्यापार का विस्तार था। हिन्दुस्तान, जो इन दो छोरों के बीच में पड़ता था, को इस व्यापार से बहुत फायदा हुआ। लम्बी समुद्री यात्रा की कठिनाइयों को भारतीय तटों पर लंगर डालकर कम करने की कोशिश की जाती थी।

(अ) मुख्य भागीदार

इन सदियों में एशिया के व्यापार पर अरबों का प्रभुत्व रहा। आठवीं सदी में सौराष्ट्र तट पर स्थित बल्लभी के बाजार और महत्वपूर्ण बंदरगाह को नष्ट करने के बाद उन्होंने अरब सागर में अपने को मुख्य समुद्री ताकत के रूप में स्थापित किया। बाद में बारहवीं सदी में चीन भी इस व्यापार का एक महत्वपूर्ण भागीदार बना और उसने दक्षिण पूर्वी एशिया और भारत में अपने जहाज भेजने शुरू किए किन्तु इससे अरबों की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा जिन्होने एशियाई व्यापार पर अपनी सर्वोच्च पकड़ को कायम रखा।

स्वदेशी स्रोतों और विदेशी विवरणों में उल्लेखित छिटपुट जानकारियां इंगित करती है कि अरबों की प्रबल प्रतिस्पर्धा के बावजूद भारतीय दसवीं सदी के बाद समुद्रों से आगे दूसरे प्रदेशों में जा रहे थे। दसवीं सदी के एक अरब लेखक अब्बू जैद ने लिखा है कि भारतीय व्यापारी फारस की खाड़ी में स्थित सिराफ जाते थे। जब कि इब्न बतूता (1400 ई.) लाल सागर के एडन में भारतीय व्यापारियों के एक उपनिवेश के विषय में बताता है। चौदहवीं सदी के एक गुजराती ग्रंथ में कच्छ के एक व्यापारी जगदु का उल्लेख है जो होरमूज में अवस्थित भारतीय एजेंटों की मदद से फारस से व्यापार करता था। दक्षिण भारत में चोल समुद्री व्यापार में गहरी रुचि लेते थे। मलाया और सुमात्रा में प्राप्त तमिल अभिलेखों से इन इलाकों में तमिल व्यापारिक समुदाय की वाणिज्यिक गतिविधियों का पता चलता है। चोलों ने चीन से संबंध सुधारने के लिए भी कई दूत भेजे। उन्होंने ग्यारहवीं सदी में चीन को जाने वाले समुद्री मार्ग को अपने व्यापार के लिए सुरक्षित रखने के लिए श्रीविजय साम्राज्य के खिलाफ भी समुद्री अभियान भेजे। किन्तु कुल मिलाकर भारतीय व्यापारियों की व्यक्तिगत भागीदारी का उल्लेख बहुत सीमित है। इससे भारतीय वस्तुओं की मांग पर प्रभाव नहीं पड़ा जो बाहर की दुनिया को अरबों और चीनियों द्वारा मिलती थी।

(ब) विनिमय होने वाली वस्तुएं

जहां तक एशियाई व्यापार में शामिल वस्तुओं की बात है, चीनी ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि मालाबार तट को चीन और दक्षिण पूर्वी एशिया से रेशम, चीनी, मिट्टी के बर्तन, कपूर, लौंग, मोम, चंदन की लकड़ी, इलायची इत्यादि मिलते थे। इनमें से बहुत सी वस्तुएं शायद अरब देशों को पुन: निर्यात होती थीं लेकिन कुछ हिन्दुस्तान के लिए भी थीं, खास तौर पर रेशम जिसकी स्थानीय बाजारों में काफी मांग थी।

मारको पोलो हमें बताते हैं कि गुजरात में कैम्बे के बंदरगाहों में दूर से आने वाले जहाज अन्य वस्तुओं के अलावा सोना, चांदी और तांबा लाते थे। टिन पूर्वी एशिया से हिन्दुस्तान आने वाला अन्य धातु था।

पूर्वी उत्पादों के बदले भारत अपनी सुगन्धित वस्तुएं और मसाले खास तौर पर काली मिर्च भेजता था। मारको पोलो के अनुसार किन्से शहर (हैंग-चाऊ) में ही रोजाना 10 हजार पौण्ड काली मिर्च की खपत होती थी। तेरहवीं सदी का चीनी बंदरगाह अधिकारी चाऊ-जू-कुआ बताता है कि गुजरात, मालवा, मालाबार और कोरोमण्डल चीन को सूती कपड़े भेजते थे। इब्न बतूता (ई 1333) ने इंगित किया है कि चीन के शहरों में सूती कपड़े रेशम से ज्यादा दुर्लभ और कीमती थे। भारत चीन को हाथी दांत, गैंडों के सींग और कुछ बहुमूल्य और अर्ध-बहुमूल्य पत्थर भी निर्यात करता था। बहुत से अरबी अभिलेख जो कैम्बे, समारथ और जूनागढ़ में मिले हैं, प्रकट करते हैं कि फारस की खाड़ी के व्यापारी, सौदागर और जहाज के मालिक बारहवीं-तेरहवीं सदी में पश्चिमी भारत आए थे। फारस की खाड़ी में होरमूज से गुजरात के तटों पर आए हुए जहाजों का उल्लेख लेखापद्धति में

मिलता है।

जहां तक अरब और पश्चिमी देशों के व्यापार की वस्तुओं का सवाल है, यहूदी सौदागर भारत के पश्चिमी तटों से बहुत सारा माल मिश्र के बाजारों में ले जाते थे। इनमें मसाले, सुगन्धित वस्तुएं, रंग, जड़ी बूटियां, कांस्य और पीतल के बर्तन, कपड़े, मोती, मनके, नारियल इत्यादि थे। भारत सागौन की लकड़ी का निर्यात भी करता था। इसका इस्तेमाल फारस की खाड़ी और दक्षिण अरब के लगभग वृक्षहीन इलाकों में जहाज बनाने और घरों के निर्माण में होता था। भारतीय बंदरगाहों से अतिरिक्त अनाज मुख्यतः चावल दूसरे तटवर्ती इलाकों के समुदायों को भेजा जाता था जहां उनकी जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त खाद्य पदार्थ नहीं होते थे। मारको पोलो के अनुसार अरब में गुजरात के महीन और नक्काशीदार चमड़े की चटाइयों की काफी मांग थी। भारत अपने लोहे और इस्पात उत्पादों खास तौर से तलवार और भालों के लिए भी प्रसिद्ध था जिनकी पश्चिमी देशों में बहुत मांग थी।
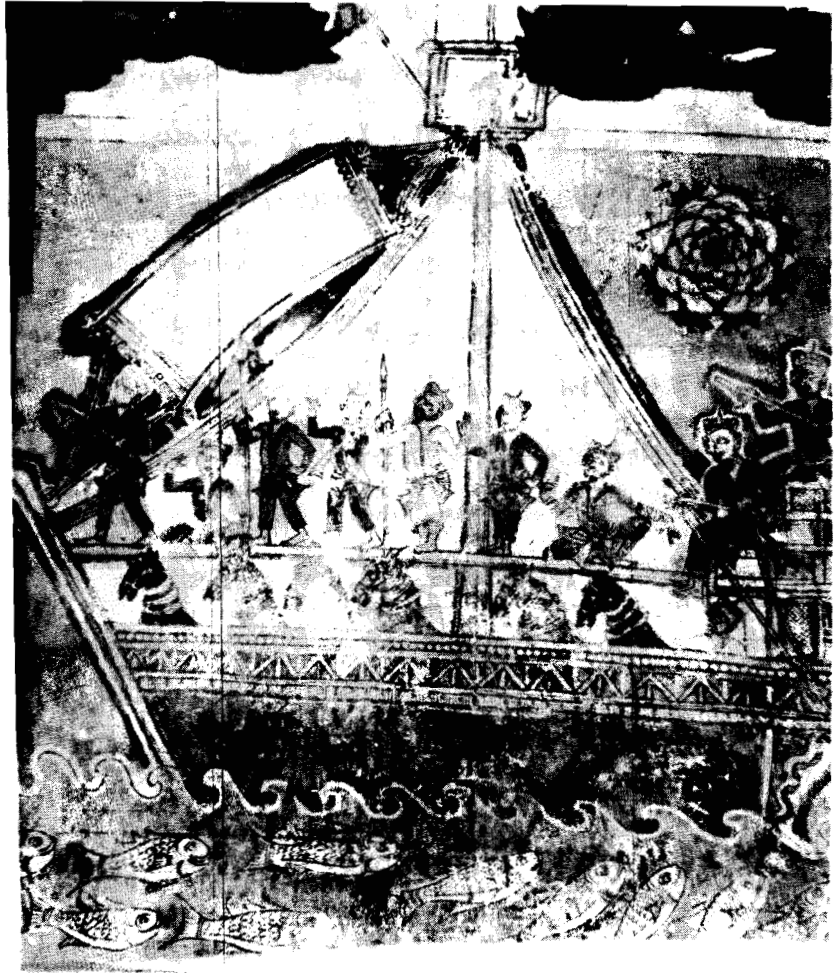
10. तिरुन्ववेली में थिरुपुदैमार्थुर मंदिर से प्राप्त एक कलाकृति जिसमें जहाज द्वारा व्यापारी और घोड़े लाते दिखाए गए हैं।

जहां तक पश्चिम से आयात का सवाल है सबसे महत्वपूर्ण वस्तु कपड़ा था। प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में जैसे-जैसे सामंती सरदारों और मुखियों की संख्या बढ़ी, घोड़ों की मांग कई गुना बढ़ गयी। घोड़े भू-मार्गों तथा समुद्री-मार्गों से लाए जाते थे। इब्न बतूता हमें बताता है कि उत्तर पश्चिमी भू-मार्गों से आने वाले घोड़ों के व्यापारी काफी मुनाफा कमाते थे। एक अरब लेखक वस्साफ (ई. 1328) के अनुसार तेरहवीं सदी में कोरोमण्डल तट, कैम्बे और दूसरे बंदरगाहों में प्रति वर्ष 10 हजार घोड़े लाए जाते थे। घोड़े बेहरीन, मसकत, अदेन, फारस आदि जैसी जगहों से लाए जाते थे। घोड़ों के अलावा छुहारे, हाथी दांत, मूंगा, पन्ना इत्यादि भी पश्चिम से भारत लाए जाते थे।

(स) बंदरगाह

भारतीय तटों पर बहुत सारे बंदरगाह थे जो न सिर्फ अन्तर्देशीय व्यापारिक तंत्र के हिस्से थे बल्कि वह पूर्वी और पश्चिमी व्यापार के बीच कड़ी का काम भी करते थे। दरअसल कोई भी संकरी खाड़ी जो जहाजों के सुरक्षित लंगर डालने की सुविधा देती थी, राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय महत्व के बंदरगाह में विकसित हुई। अलइदरीसी (बारहवीं सदी) के अनुसार सिन्धु के मुहाने पर देवाल एक महत्वपूर्ण बंदरगाह था जहां अरब और चीन तथा अन्य भारतीय बंदरगाहों से पोत आते थे। गुजरात तट के मुख्य बंदरगाह सोमनाथ भड़ौच और कैम्बे थे। सोमनाथ के पूरब में चीन और पश्चिम में जांजीबार (अफ्रीका में) के साथ संपर्क थे। भडौच या प्राचीन बृगुकच्छ का बहुत लम्बा इतिहास रहा है। अरबी स्रोतों में कैम्बे का उल्लेख खम्बायत और संस्कृत स्रोतों में इसका उल्लेख स्तम्भ तीर्थ के रूप में हुआ है।

इसका प्रारंभिक उल्लेख नौवीं सदी में मिलता है। भारत के पश्चिमी तट पर सोपारा और थाना दूसरे महत्वपूर्ण बंदरगाह थे।

मालाबार तट पर क्वीलोन एक महत्वपूर्ण बंदरगाह के रूप में उभरा था। अरब लेखक हमें बताते हैं कि दक्षिण पूर्वी एशिया में केडा की ओर रवाना होने से पहले पश्चिम से आने वाले जहाज क्वीलोन के बंदरगाह पर स्वच्छ पानी लेने के लिए आते थे। इसी प्रकार तेरहवीं सदी के चीनी स्रोत बताते हैं कि अरबों के देश की ओर जाने से पहले चीनी व्यापारियों को क्वीलोन में अपने जहाज बदलने पड़ते थे।

दसवीं और तेरहवीं सदियों के बीच पूरब और पश्चिम से आने वाले जहाजों के लिए कोरोमंडल तट का विकास सामान उतारने या चढ़ाने के स्थान में हो गया। अरब लेखक वस्साफ हमें बताते हैं कि फारस की खाड़ी के द्वीपों का धन और यूरोप तक के दूसरे देशों की सुन्दरता कोरोमंडल तट की देन है। इस इलाके का सबसे महत्वूर्ण बंदरगाह नागपट्टनम था। पुरी और कलिंगपट्टम उड़ीसा तट के महत्वपूर्ण बंदरगाह थे। बंगाल में ताम्रलिप्ती का फिर से उत्कर्ष हुआ। हालांकि कुछ विद्वानों के अनुसार इसका स्थान धीरे-धीरे सप्तग्राम ले रहा था।

(द) व्यापारियों की सुरक्षा

भारी मुनाफों को ध्यान में रखते हुए समकालीन राजसी अधिकारियों ने विदेशी व्यापार में संलग्न सौदागरों को सुविधाएं देने में गहरी रुचि दिखाई। गुजरात के चालुक्यों (दसवीं से तेरहवीं सदी) ने राजसी नियंत्रण में बंदरगाहों के एक अलग विभाग (वेला कुलाकरन) का गठन किया। दक्षिण भारत में भी चोल अपने बंदरगाहों की स्थानीय व्यापारी संगठनों की मदद से तथा राजसी अधिकारियों के माध्यम से व्यवस्था करते थे जो विदेशी व्यापारियों की देखभाल करते थे और बंदरगाह से चुंगी इकट्ठा करते थे। अरब लेखक एक मत होकर राष्ट्रकूट राजाओं की अरबों के प्रति उनकी शांति, सहिष्णुता की नीति की प्रशंसा करते हैं। गुजरात के चालुक्य भी अपने राज्य में मुस्लिम व्यापारियों को धार्मिक और आर्थिक आजादी देते थे। इब्न बतूता बताते हैं कि जब भी कोई विदेशी व्यापारी मर जाता था उसकी सम्पत्ति जब्त नहीं होती थी बल्कि उसे सुरक्षित रख दिया जाता था जिससे कि उसके उत्तराधिकारी को वह सौंपी जा सके। आंध्र प्रदेश के गुन्टूर जिला के मौटूपल्ली के ई. 1244 के अभिलेखों से मालूम होता है कि राजा तूफान में भटके जहाजों को सुरक्षा देता था और विदेशी व्यापारियों का विश्वास जीतने के लिए राज्य के कानून के अनुसार कर एकत्र करने का वचन देता था।

3.5.3 नगरों का पुनरुत्थान

प्रारंभिक मध्ययुगीन भारत (ई. 900 से 1300) का दूसरा चरण दो पूर्ववर्ती सदियों से विलग था, क्योंकि इस काल में शहरी केन्द्रों का स्पष्ट पुनरुत्थान देखा जा सकता है। यह पुनरुत्थान लगभग अखिल भारतीय विशेषता बन गई। प्रायः इसे भारतीय उपमहाद्वीप का ''तीसरा शहरीकरण'' कहा जा सकता है। (विवरण के लिए इकाई 2 देखें)

बोध प्रश्न 3

1) (अ) अभिलेखों में उल्लेखित भूमि व्यापार की प्रमुख वस्तुओं को सूचीबद्ध कीजिए।

....
....
....
....
....

(ब) धार्मिक संस्थाओं ने व्यापारिक गतिविधियों को कैसे मदद पहुंचाई?

....
....
....
....
....

2) व्यापारिक उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले मुख्य भू-मार्गों का संक्षेप में उल्लेख करें?

....
....
....
....
....

3) नीचे दिए गए सही कथनों पर ✓ और गलत कथनों पर ✗ का चिन्ह लगाएं।

i) चीनी और भारतीय सौदागरों के जरिए भारतीय माल विदेशों में पहुंचा।

ii) भारतीय सौदागरों ने समुद्री व्यापार में भाग लिया।

iii) मलाया और सुमात्रा के कुछ अभिलेखों में वहां तमिल व्यापारियों की मौजूदगी के संकेत मिलते हैं।

iv) अदेन में भारतीय सौदागरों की एक बस्ती थी।

4) (अ) भारत में घोड़ों के आयात पर पांच पंक्तियां लिखें।

....
....
....
....
....

(ब) भारत के पूरब, पश्चिम, दक्षिण तटों में स्थित बंदरगाहों की सूची दें। (प्रत्येक क्षेत्र के दो बंदरगाहों के नाम लिखिए)

....
....
....
....
....

3.6 सारांश

ई. 700-1300 के दौरान व्यापार और वाणिज्य के अध्ययन से निम्न बातों पर प्रकाश पड़ता है :

- अन्तर्देशीय और विदेशी व्यापार के दो चरण
- धातु के सिक्कों के इस्तेमाल का स्वरूप और सीमा तथा व्यापार के तंत्र में विनिमय के साधनों की भूमिका
- व्यापार के विकास में कृषि विस्तार और कृषि उत्पादन की वृद्धि का योगदान, और
- इन सदियों के दौरान व्यापार और वाणिज्य का नगरों की स्थिति पर प्रभाव।

छठी सदी के दौरान व्यापार और वाणिज्य की विशेषता उसका सामंतीकरण है। मुद्रा के आदान-प्रदान का तरीका, राज्य के अधिकारियों और शासकों जिनका भूमि से संबंध था की अपने भूमि हितों को लेकर व्यवहारकुशलता। विशिष्ट शासक वर्ग (अभिजात्य) का बड़े व्यापारियों और सौदागरों के हित में काम करना और दस्तकारों और शिल्पकारों पर प्रतिबंध लगाया जाना (देखें इकाई 4) सामंतीकरण की प्रक्रिया के सूचक हैं।

3.7 शब्दावली

घनका : तेल की चक्की

जलपथकाराना : राजमार्गों की देखभाल करने वाला अधिकारी/विभाग

तेलिका : तेली

वेलाकुला-करना : बंदरगाह का अधिकारी/विभाग

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) पहले चरण में धातु मुद्रा, व्यापार तथा शहरी केन्द्रों का ह्रास और दूसरे चरण में इनका पुनरुत्थान हुआ (देखें भाग 3.2)।

2) i) ✓ ii) × iii) ✓
iv) × भाग 3.3.1 भी देखें।

3) भारत के व्यापार पर उत्तर पश्चिम में अरबों की मौजूदगी और समुद्री हमलों का बुरा प्रभाव पड़ा। किन्तु दसवीं सदी के बाद उन्होंने समुद्री व्यापार के विकास में योगदान दिया। देखें उपभाग 3.3.2

4) नगरों के ह्रास का मुख्य कारण व्यापार का ह्रास था, उपभाग 3.3.3 को भी देखें।

बोध प्रश्न 2

1) भारत कपास और रेशम के कपड़ों का उत्पादन करता था जिसके स्तर की तुलना विश्व के उच्च कोटि के कपड़ों से की जाती थी। देखें उपभाग 3.4.।

2) मुख्य धातु कार्य लोहे, तांबे, सोने, चांदी के थे। देखें उपभाग 3.4.2)।

3) ढाली गई मुद्रा में उल्लेखनीय वृद्धि हुई किन्तु बहुत से सौदे वस्तुओं के विनिमय के जरिए होते थे। अर्थव्यवस्था पूरी तरह ढाली गई मुद्रा पर निर्भर नहीं थी। देखें उपभाग 3.4.2)।

बोध प्रश्न 3

1) (अ) उपभाग 3.5.1 (अ) देखें।

   (ब) धार्मिक संस्थानों के विशाल संसाधनों के कारण कई वस्तुओं की मांग बढ़ीं। देखें उपभाग 3.5.1 (अ)।

2) समकालीन स्रोतों में कई मार्गों का उल्लेख है। देखें उपभाग 3.5.1 (ब)।

3) i) ✓ ii) × iii) ✓ iv) ✓

4) (अ) देखें उपभाग 3.5.2 (ब)।

   (ब) पश्चिमी भडौच, कैम्बे, पूर्वीपुरी, कालिंगपटोर, दक्षिणी क्वीलोन, कोरोमंडल।